# जिहाद के प्रलोभन: सैक्स और लूट

अनवर शेख

**हिन्दू राइटर्स फोरम**

**129–बी, एम.आई.जी. राजौरी गार्डन**

**नई दिल्ली–110027**

# जिहाद के प्रलोभन: सैक्स और लूट

*-अनवर शेख*

जिहाद वेफ प्रलोभन : सैक्स और लूट-अनवर शेख । यह पुस्तिका अनवर शेख वेफ निबन्ध Islamic Jihad का डॉ. वेफ.वी.पालीवाल द्वारा हिन्दी अनुवाद है।

सहयोग राशि-रु. 10/-

पैठछ8186970 9428

प्रथम संस्करण-नवम्बर 2008
एक हजार प्रतियाँ

हिन्दू राइटर्स पफोरम
129-बी, एम.आई.जी. राजौरी गार्डन
नई दिल्ली-110027

# जिहाद के प्रलोभन : सैक्स और लूट

-अनवर शेख़

इस्लाम ही एक ऐसा धर्म है जिसने मानव समाज को दो स्थायी पारस्परिक युद्ध करने वाले समूहों में बाँट रखा है। इनमें से जो अल्लाह और पैगम्बर मुहम्मद में विश्वास करते हैं, वे अल्लाह की पार्टी वाले कहलाते हैं और जो ऐसा नहीं मानते हैं, वे शैतान की पार्टी वाले हैं (58:19,22)। इनमें से पहले वर्ग वालों का सबसे पवित्रतम कर्त्तव्य यह है कि वे दूसरे वर्ग वालों को पराधीन करके समाप्त कर दें। यह उद्देश्य इतना आवश्यक है कि उसके लिए इस्लाम अपने अनुयायियों को न केवल गैर-ईमान वालों की हत्या, लूट और उनकी स्त्रियों को पराधीन करने को उत्साहित करता है, बल्कि इस प्रकार की हत्या, लूट और शील भ्रष्टीकरण को सबसे बड़ा पुण्य कार्य तक घोषित करता है। इस्लाम इसे 'जिहाद' कहता है जोकि किसी मुजाहिद (इस्लाम का पवित्र सैनिक) को उद्धार और 'जन्नत' में स्थान देने की गारंटी देता है।

हत्या, लूट, स्त्रियों का शीलहरण, उनको विधुरीकरण तथा अपाहिजीकरण, जिन्हें कि नैतिकता के सभी मापदण्डों में सबसे निन्दनीय कर्म माना गया है लेकिन इस्लाम इन अमानवीय कुकृत्यों को सबसे पुण्यकारी कर्म प्रक्षेपित करने में सफल हो गया है। भारत में यह अथक प्रचार की ही शक्ति का फल है, जिसने लोगों (हिन्दुओं) के तर्कसंगत व उचित विचारों को भी पंगु और प्रभावहीन बना दिया है जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने अपने ही घर में इस्लाम को स्वीकार कर लिया है।

यद्यपि हिन्दुओं का इस्लाम में सामूहिक रूप से धर्मान्तरण का केवल यही एक कारण नहीं है, उनका अपने धर्म ग्रंथों-वेदों, जोकि उनके धर्म और संस्कृति के आदि स्रोत हैं, की पूर्ण अज्ञानता भी एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण है।

'जिहाद' का शाब्दिक अर्थ है 'प्रयास'। इस प्रकार मुसलमानों के समर्थक हमको विश्वास दिलवाऐंगे कि 'इस्लामी जिहाद' पद का यही सही अर्थ है जबकि व्यवहार में प्रदर्शित इस शब्द का अर्थ बर्बरता, नृशंसता और खूनी मानसिकता के कारण इसका 'प्रयास' अर्थ करना अत्यन्त न्यूनोक्ति है। इस बात को समझने के लिए ज़रा इतिहास के पन्नों को पलटिए कि योरोप में मुस्लिम योद्धाओं ने किस प्रकार वहाँ की आधी आबादी को समाप्त करने के लिए चार सौ वर्षों तक 'पवित्र युद्ध' (जिहाद) किया। उन मुजाहिदों (मुस्लिम योद्धाओं) ने मिश्र और ईरान के लोगों द्वारा लेशमात्र भी बिना भड़काने पर भी वहाँ की संस्कृतियों को समूल नष्ट कर दिया। भारत ने सैकड़ों वर्षों तक इन लुटेरों के हाथों महान विनाश, अपमान और व्यापक विकृतीकरण को झेला है जिनके अनुयायी आज भी भारत को 'दारुल-हरब' (युद्ध भूमि) मानते हैं और जो दुर्भावना, द्वेष, दुष्कृत्य तथा उत्पीड़न द्वारा इसे इस्लामी राज्य बनाना चाहते हैं।

इस्लामी 'जिहाद' की अवधारणा इतनी पेचीदा है कि इसकी परिभाषा और सम्पूर्ण व्याख्या करना तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि पैगम्बर मुहम्मद के उद्देश्यों को बतलाया और उनकी पूर्ति के लिए अपनाए गए तरीकों को सुस्पष्ट किया न जाए।

अरबवासी पैगन (देवपूजक) थे जोकि मूर्ति पूजा किया करते थे जिससे कि मनुष्य की 'अज्ञात' शक्ति के प्रति आन्तरिक भय की भावना प्रगट होती है। मनुष्य उस दैवी शक्ति के सम्भावित भावी प्रकोप से बचने और उसे प्रसन्न करने के लिए उसके सामने नमन करता है। हालांकि सभी हिन्दू ऐसा नहीं मानते हैं। वे एक महान शक्ति के पूजक हैं और वे प्रत्येक प्राकृतिक प्रक्रिया के पीछे एक 'शक्ति' की आराधना करते हैं, चाहे वे उसे 'देव'कहें या 'देवी'।

अरबवासियों के मन्दिर भारतीय 'त्रिदेव' (त्रिमूर्ति) के सिद्धांत से अत्यधिक प्रभावित थे जोकि बहुदेवत्व का प्रतिनिधित्व करता है। लेकिन मुहम्मद इसका कठोरता से विरोध करते थे और इसके स्थान पर वे एकेश्वरवाद का उपदेश देते थे यानी कि अल्लाह के अलावा अन्य कोई 'पूजने योग्य' देवता नहीं है। इसका यही अर्थ हुआ कि वे अन्य सब देवता झूठे हैं, उसके अलावा जिसकी कि उपासना का मुहम्मद उपदेश देते थे। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि अल्लाह ने मनुष्य को अपना एक गुलाम के समान बनाया हुआ है जिसके जीवन का उद्देश्य केवल यही है कि वह उसके सामने नमन करे, झुके और विनती करे।

मुहम्मद ने अपने उद्देश्य को और अधिक साफ़ तौर पर समझाने के लिए दावा किया कि वह अल्लाह का 'रसूल' (सन्देशवाहक) है जिसने कि अपने उपदेशों को लोगों तक पहुँचाने के लिए उसे भेजा है ताकि वे उसमें विश्वास करें और केवल उसी ही की पूजा करें। उसने कहा कि अल्लाह यहूदियों के परमात्मा यहोवा की भांति एक ईर्ष्यालु देवता है जोकि उन सब पापों को माफ़ कर देगा, सिवाय उसके, जो वह किसी अन्य देवता को अल्लाह के समान मानने और उसे अल्लाह के साथ पूजा में सम्मिलित करने का पाप करेगा। इस प्रकार उसने अन्य सभी देवताओं को अभिशापित कर दिया और लोगों से उनका सम्पूर्ण विनाश करने की चाही।

उसने इस बात पर भी बल दिया कि अल्लाह सर्वशक्तिमान, सम्पूर्ण और सबका सृष्टा है यानी कि वह प्रत्येक वस्तु और इच्छा से मुक्त है। लेकिन अल्लाह की यह परिभाषा एक तर्कसंगत परीक्षण के सामने सत्य सिद्ध नहीं ठहरती है। यहाँ प्रश्न यह है कि अल्लाह भला सर्वशक्तिमान कैसे हो सकता है यदि वह एक मनुष्य यानी कि पैगम्बर पर निर्भर करता हो जो लोगों को उसके अस्तित्व और महानता के बारे में लोगों को विश्वास दिलाए और उसके प्रति आस्था जगाए? इसके अलावा यदि वह सर्व सृष्टा है, तो उसे लोगों को उसमें स्वतः ही विश्वास करने के साथ ही पैदा करना चाहिए। अन्त में ऐसा परमात्मा, जोकि स्वयं ही देवत्व पाने की प्रबलता से इच्छा करता हो, वह सभी इच्छाओं से मुक्त एवं सम्पूर्ण नहीं हो सकता है।

उपरोक्त विवरण से तो यह नतीजा साफ़ निकलता है कि सच्चे परमात्मा को न तो (मनुष्य) पैगम्बर की आवश्यकता होती है, और न पैगम्बरपन उस परमात्मा के उद्देश्य की पूर्ति करने में ही समर्थ है। इसलिए पैगम्बर मुहम्मद का लक्ष्य ऊपर कहे गए उद्देश्य के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा ही था। मेरा उपरोक्त कथन यूं ही मनघडन्त नहीं है। कृपया निम्नलिखित आयत पर विचार करें-

*"तुम्हें तुम्हारा धर्म और मुझे मेरा धर्म"* । (109 : 5)इस आयत के द्वारा पैगम्बर मुहम्मद साफ़ कह रहे हैं कि लोगों को उन्हें अपना धर्म स्वीकार करने का अधिकार है। मगर वे स्वयं अपने ही धर्म का पालन करेंगे। यदि यही सच्चाई है तो उनके पास लोगों के लिए कोई नया उपदेश नहीं है और इस प्रकार उनके पास अल्लाह से कोई संदेश प्राप्त नहीं है।

क्योंकि पैगम्बर मुहम्मद अरब साम्राज्य का संस्थापक था और वह ऐसा किसी एक तीव्र राजनैतिक आकांक्षा के बिना नहीं कर सकता था। यह एक ऐतिहासिक सच्चाई है कि कुछ लोग राजनीतिज्ञों के रूप में सांसारिक शक्ति प्राप्त कर लेते हैं मगर कुछ अन्य ऐसे भी हैं जो अपने राजनैतिक सपने आध्यात्मिक नेतृत्व की आड़ में पूरे कर लेते हैं। ऐसा विशेषकर मध्यपूर्व के देशों के लिए लागू होता है जहाँ कि पैगम्बरपन की सांस्कृतिक परम्परा अति प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। यही कारण है कि इन क्षेत्रों के प्रशासकों ने वहाँ स्वयं 'विकार ऑफ गॉड' यानी 'ईश्वर का उपधर्माध्यक्ष' के रूप में राज्य किया। अर्थात् उसने इस बात पर बल दिया कि परमात्मा सदैव उसके सीधे सम्पर्क में रहता है और वह स्वयं केवल उसी की ही आज्ञाओं के अनुसार कार्य करता है। जिसे कि ईश्वर का 'विकार' या उपधर्माध्यक्ष कहा जाता है। उसी का एक दूसरा नाम 'संदेशवाहक' या पैगम्बर है और यही वह पद है जिसके लिए मुहम्मद ने स्वयं के लिए दावा किया था। इससे साफ़ प्रकट होता है कि मध्यपूर्व के देशों के इन 'विकारों' के समान मुहम्मद की भी अपनी एक राजनैतिक आकांक्षा थी और इस सत्य की पुष्टि उन सफलताओं से भली-भांति हो जाती है जोकि अरब साम्राज्य के संस्थापक के रूप में उसने प्राप्त की।

हालांकि उसकी महत्वाकांक्षा एक सांसारिक प्रशासक, एक सामान्य पैगम्बर और यहाँ तक कि परमात्मा से भी कहीं अधिक थी लेकिन जब वह कमज़ोर था तो उसने घोषणा की *"कह दो : मुझे तो बस यह हुक्म दिया गया है कि मैं अल्लाह की 'इबादत' करूं और उसके साथ किसी को साझी न ठहराऊं। मैं उसी की ओर बुलाता हूँ : और उसी की ओर मुझे लौटना है" (13:36)*

लेकिन जब वह शक्तिशाली हो गया, तो उसने स्वयं अल्लाह का ही तख्ता पलट दिया : *"निश्चय ही अल्लाह और उसके फिरिश्ते नबी पर 'रहमत' ;इसमेपदहेद्ध भेजते हैं। हे लोगों जो ईमानदार हो! तुम भी उन पर रहमत ;इसमेद्ध भेजो और खूब सलाम भेजो"। (33:56)*

अब कोई भी देख सकता है कि यहाँ स्थिति बिल्कुल उलटी हो गई है।

यह मुहम्मद ही था जोकि पहले अल्लाह की प्रार्थना करता था लेकिन अब स्वयं अल्लाह और फिरिश्ते हैं जोकि मुहम्मद की प्रार्थना करते हैं। कुरान आगे यहाँ तक कहता है- *"निस्संदेह वह एक आदरणीय सन्देशवाहक (रसूल) की (पहुँचाई हुई) बात है जो शक्तिशाली है, सिंहासन के स्वामी के यहाँ बड़ा ही मरतबे वाला है वहाँ उसकी बात मानी जाती है" (21:19-20)*

मुसलमान इन आयतों का यह अर्थ निकालते हैं कि 'न्याय के दिन' पैगम्बर (मुहम्मद) अल्लाह के दाएँ हाथ बैठेगा जहाँ कि वह अल्लाह के साथ "न्याय के दैवी सिंहासन" का सहभागी होगा और यह उसकी सिफारिश ही फैसला करेगी कि कौन जन्नत में जाएगा और कौन दोज़ख में। इस तरह मुहम्मद अल्लाह के अधिकारों पर अधिकार जमाकर वरीयता प्राप्त कर लेता है।

अब कोई भी मुहम्मद की आत्म-उत्थापन की योजना को साफ़-साफ़ देख सकता है। पहले तो वह मूर्तियों को तोड़ने का समर्थन करता है। ताकि वे अल्लाह से प्रतिस्पर्धा न कर सकें और इसके बाद वह स्वयं पैगम्बरपन की आड़ में अल्लाह और उसके फरिश्तों की प्रशंसा का पात्र बन जाता है और फिर वह इस तरह सम्मान देने की प्रक्रिया को सभी ईमानवालों के लिए आवश्यक कर देता है।

'जिहाद' मुहम्मद को देवत्व के स्तर से भी ऊपर उठाने का एक साधन है। मक्का में तेरह वर्षों तक उपदेश देने के बाद भी वह केवल लगभग सत्तर लोगों को अपना अनुयायी

बना सका। यह संख्या बल अल्लाह की सेना बनने के लिए अत्यन्त थोड़ा था। वास्तव में अधिकांश ईमानवालों ने मक्का के पैगन देवताओं का अपमान करने और उनको अस्वीकार करने के कारण अनेक यातनाएँ सहीं थीं। परिणामस्वरूप, उनके आक्रोश से बचने के लिए अन्त में, मुहम्मद अपने अनुयायियों सहित मक्का से मदीना को चले गए। वहाँ पर भी उन्होंने अपनी गतिविधियों को तेज़ी से बढ़ाना चाहा क्योंकि वास्तविक में उनका जीवन चक्र तब तेज़ी से घूम रहा था।

आमतौर पर मनुष्य का अपनी, सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा की पूर्ति करना एक अत्यन्त मुश्किल काम होता है। प्रशासक-वंशजों के कुछ संस्थापकों को अक्सर अनेक रणनीतियों और सुविधाजनक नैतिकताओं को अपनाना पड़ता है तथा अपने उद्देश्य-पूर्ति के लिए भीषण युद्धों तक को करना पड़ता है। तो फिर अल्लाह का पैगम्बर भी अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए पवित्र योद्धाओं की सेना का गठन क्यों न करे ? इसके अतिरिक्त उसे अपने ही खानदान एवं कबीले के प्रतिद्वन्दी कुरेशों से बदला भी लेना था जिन्होंने उसे और उसके मिशन को नष्ट करने के सभी सम्भव तरीके अपनाए हुए थे।

सामान्यतया मनुष्य युद्ध के परिणामों से भयभीत एवं आशंकित होता है। लेकिन साथ ही लालच उसके स्वभाव का एक अंग है और जब उसकी हेय प्रवृत्तियाँ उसके इच्छित उद्देश्य के सफल होने की उम्मीदों से प्रेरित होती हैं तो वह सही और गलत के बीच के भेदों को भूल जाता है तथा वह अपनाए गए तरीकों को उचित मानने लगता है। मुहम्मद को अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक सेना की ज़रूरत थी। लेकिन लोग पर्याप्त प्रलोभनों के बिना अपनी जान जोखिम में डालना नहीं चाहते थे। अतः मुहम्मद ने 'जिहाद' के सिद्धांत की परिकल्पना की जिसका कि व्यवहार में यही अर्थ था कि अल्लाह के नाम पर गैर-मुसलमानों से लड़ना, चाहे उन्होंने कोई ग़लत काम किया हो या नहीं। अल्लाह, जो अपने को सबका रचनाकार, सबसे दयालु और सर्वोत्तम न्यायकारी होने का दावा करता है, ने मानव समाज को दो भागों में बाँट रखा है। कुरान (58:19;22) में साफ कहा गया है कि जो अल्लाह और मुहम्मद में विश्वास करते हैं, वे अल्लाह की पार्टीवाले हैं और जो उनमें अविश्वास करते हैं, वे शैतान की पार्टीवाले हैं। उनमें पहले वाले ही समृद्धशाली और विजयी होंगे तथा बाद वाले (शैतान की पार्टी वाले) हानि उठाने वाले होंगे। ऐसा इसलिए है कि-

(i) *"अल्लाह के अनुसार सच्चा धर्म इस्लाम ही है।" (3:19)*

(ii) *"वही है जिसने अपने 'रसूल' को मर्णदर्शन और सच्चे दीन (सत्य धर्म) के साथ भेजा, ताकि वह उसे पूरे-के-पूरे "दीन पर प्रभुत्व प्रदान करे।"। (48:28;5)*

क्योंकि इस्लाम के अलावा अन्य प्रत्येक धर्म झूठा है, असत्य है, इसलिए इस्लाम के लिए यह स्वाभाविक है कि वह अन्य सभी पंथों पर शासन करे। यह कितना तानाशाही व एकाधिपतीय दर्शन है। इस दैवी तानाशाही ख्वैय्ये की ताज़पोशी करने के लिए मुसलमानों को गैर-मुसलमानों के लगातार रक्तपात और कत्ले आम की ज़रूरत है, चाहे वे गैर-मुसलमान कितने भी निरपराधी, सीधे-साधे और सदाचारी लोग ही क्यों न हों। मगर मुहम्मदीय व्यवस्था में गैर-मुसलमानों की हत्या करना, उनको लूटना, उन्हें गुलाम बनाना और उनकी स्त्रियों का शील हरण करना इतने पवित्रतम कार्य हैं कि ऐसे कुकर्म करने वाले मुसलमानों के लिए इस्लामी शब्दकोष में 'जन्नत' की गारंटी है। परन्तु इस प्रकार के कार्य विश्व भर में बुराई की जड़ माने जाते हैं तथा सभ्य जगत ऐसे कार्यों को शोचनीय और अपमानजनक कहकर निन्दा करता है। लेकिन कुरान, जिसे कि अल्लाह की वाणी कहा जाता

है, में इन कार्यों की प्रशंसा, पूजा और बड़ाई की जाती है। इससे भी अधिक आश्चर्यजनक तो यह है कि गैर-मुसलमानों के विरुद्ध इसे पवित्र युद्ध और एक अन्तहीन संघर्ष कहा गया है क्योंकि हदीस मुस्लिम (खंड 3:4597) कहती है कि इस्लाम के अनुयायियों को तब तक जिहाद जारी रखना चाहिए जब तक कि सारे विश्व में मुहम्मद का पंथ फैल न जाए।

वास्तव में एक शक्तिशाली सेना तब तक तैयार नहीं की जा सकती है यदि उसके योद्धा बुराई और भलाई के बीच के अन्तर को समझने के लिए सचेत हों तो लेकिन यदि ये एक बार भी आश्वस्त हो गए, भले ही गलत ढ़ंग से, कि केवल उनका परमात्मा ही सच्चा पवित्र और पूर्ण है और अन्य सब कुछ झूठे, अपवित्र, सड़े-गले और अविश्वसनीय हैं, तो वे एक अजेय शक्ति बन जाते हैं। इस बात की सच्चाई को समझते हुए मुहम्मद ने 'जिहाद की योजना' को 'सैक्स' और 'लूट' के आधार पर परिकल्पित किया।

## 1. सैक्स

कामवासना की तृप्ति, जो कि मनुष्य की सबसे बड़ी इच्छा होती है, ही पहला प्रलोभन है जो कि 'जिहाद' की अवधारणा में समाहित है। इस योजना में एक मुजाहिद, यानी कि इस्लाम का सैनिक, जो कि उस समय अरेबिया के शुष्क प्रदेश में कामवासना के उद्वेगों से पीड़ित था, को गैर-मुसलमानों की संहार योजना में भाग लेने के बदले में यौन-सुखों के प्रलोभनों का वायदा किया गया है। जैसे कि यदि वह युद्ध भूमि की कठिन परिस्थितियों में मारा गया तो उसे 'जन्नत' में उसकी प्रतीक्षा कर रहीं अनेक हूरों के साथ असीमित भोगविलासों एवं यौन-सुखों का आनंद मिलेगा; और यदि वह जीवित बचा रहा तो उसको 'गैर-ईमान वालों' के लूट के माल, जिसमें कि उनकी स्त्रियाँ भी शामिल होंगी, में हिस्सा मिलेगा।

वैसे तो इस्लाम में सैक्स संबंधी अपराधों, जैसे कि पर-स्त्री गमन और व्यभिचार, आदि के लिए सार्वजनिक रूप में कोड़े लगाने और पत्थर मारकर मृत्यु दण्ड देने की व्यवस्था दी गई है क्योंकि इस्लाम इन कुकृत्यों को विवाह की मान्यताओं के बाहर होने के कारण गैर-कानूनी मानता है। लेकिन जब कोई मुसलमान, गैर-मुसलमान को अल्लाह के नाम पर मारने के लिए और उनकी सम्पत्ति को लूटने के लिए लड़ता है, तब कुरान इस कानून में ढ़ील दे देता है जैसे-*"और तुम में से जिस किसी में इतना सामर्थ्य न हो कि 'ईमान वाली' महिलाओं से विवाह करे, तो तुम्हारी वे लौंडियाँ ही सही जो तुम्हारे अधिकार में हैं, जो इनके मालिकों की अनुमति से तुम उनसे विवाह कर लो और सामान्य नियम के अनुसार उन्हें उनके मध्य अदा करो। इस तरह से वे विवाहिता बनाई जाएँ। वे न व्यभिचार करने वाली हों, और न चोरी छिपे प्रेम करने वाली हों।" (4:25)*

ये आयतें लेशमात्र भी किसी संदेह के बिना प्रगट करती हैं कि कुरान शादी के बाहर यौन संबंधों को प्रतिबंधित करता है; कामवासना की तृप्ति के लिए विवाह करना अत्यावश्यक है। लेकिन जब मामला मुजाहिदों के बारे में होता है-तो इस कानून की अवज्ञा कर दी जाती है। देखिए प्रमाण-

*"औरास के युद्ध के समय, मुसलमानों ने कुछ (गैर-मुसलमान) स्त्रियों को उनके पतियों सहित कैद किया था। हालांकि इसके पहले एक मुसलमान को एक गैर-मुसलमान विवाहित स्त्री के साथ सम्भोग करने की मनाही की गई थी। लेकिन इस अवसर पर पैगम्बर के सामने यह उजागर किया गया कि अल्लाह ने इस प्रतिबंध में छूट दे दी है और योद्धा को उस स्त्री के साथ सम्भोग करने की अनुमति दे दी गई है यदि वह स्त्री लड़ाई में उसके*

*लूट के माल के हिस्से में आ गई है और इस प्रकार वह उसकी सम्पत्ति हो गई है" (हदीस तिरमिजी खंड, एक, पृ. 417)*

'जिहाद' में योद्धा बनाने के लिए यह कैसा सुन्दर प्रलोभन है! इसके सामने विवाह संस्था की अपनी मान्यता, महत्व और चमक भी फीकी पड़ जाती है। यह याद रखना चाहिए कि बाइजैंटाइन (रोमन) साम्राज्य में भी अपनी लौंडियों या रखेलों के साथ यौन संबंधों को मृत्यु दण्ड का दण्डनीय अपराध समझा जाता था। लेकिन, अल्लाह का सच्चा धर्म-इस्लाम, अपनी मर्जी पर, इसकी आज्ञा देता है।

यहाँ तक कि स्वयं पैगम्बर मुहम्मद भी इस दैवी रियायत में लिप्त हो गए थे। इतिहास बताता है कि बानू कुरेजा नामक यहूदी कबीले के समर्पण करने के बाद, जो कि उन्होंने 'जिहाद' के फलस्वरूप किया था, उन्होंने 800 यहूदियों को कत्ल करवा दिया। इन पीड़ितों में, बीस वर्षीया यहूदी सुन्दरी, रिहाना, जो कि लूट के माल में मुहम्मद के हिस्से में आई थी, के पिता, पति और भाई भी थे। इस कत्ले आम की अध्यक्षता करने के बाद वह अपने तम्बू में वापिस आया जहाँ कि शोकाकुल रिहाना अपने भाग्य के निर्णय की प्रतीक्षा कर रही थी। रिहाना के अनुपम सौंदर्य की चमक से मोहित होकर पैगम्बर ने उसके सामने, जो कि अत्यन्त निराश और शोक-संतृप्त हुई आँसुओं से सुबक रही थी, विवाह का प्रस्ताव रखा। उसने मुहम्मद को अन्य लोगों के दुख और वियोग की पीड़ा में भी इतना निष्ठुर अनुभव करते हुए, उसे अल्लाह का पैगम्बर मानने से इन्कार कर दिया और उसकी पत्नी बनने की अपेक्षा आजीवन उसकी रखैल बने रहने का निर्णय लिया।

सैक्स का प्रलोभन अनुयायियों को आकर्षित करने का एक बहुत बडा साधन रहा है जो कि अन्त में उन्हें एक निष्ठावान भक्त बना देता है। टैफ के लोगों ने, फरवरी 630 एडी में, घेराबंदी की विभीषिकाओं से बचने के लिए समर्पण कर दिया था। इस अवसर पर पैगम्बर मुहम्मद को तीन सुन्दर स्त्रियाँ भेंट की गईं। उसने इनमें से एक को 'अली' को, दूसरी को 'उस्मान' को और तीसरी को 'उमर' को दे दिया।" इस घटना का महत्त्व इसी से समझा जा सकता है कि अली और उस्मान दोनों ही उसके दामाद थे, जबकि उमर उसका ससुर था।

इस्लाम के पवित्र योद्धाओं को यौन-सुखों और भोगविलास के असामान्य विशेषाधिकार दिए गए हैं। यदि वे लड़ाई के मैदान में जीवित रह जाते हैं तो उनके लिए गैर-मुसलमानों की स्त्रियाँ रखैलों के रूप में सुनिश्चित हो जाती हैं। लेकिन यदि वे युद्ध के मैदान में मारे जाते हैं तो वे हूरियों से भरे 'जन्नत' के अत्यन्त विलासिता पूर्ण वातावरण में निश्चित रूप से प्रवेश के अधिकारी हो जाते हैं। स्वयं देखिए-

*;पद्ध "उनके (मुसलमानों) के लिए जानी बूझी रोज़ी है, मेवे, और उनका सम्मान किया जाएगा। नेमत भरी जन्नतों में तख्तों पर आमने-सामने बैठे होंगे। निथरी बहती (शराब के स्रोत) से मद्य पात्र भर-भर कर उनके बीच फिराए जाएँगे उज्जवल पीने वालों के लिए आस्वाद न उसमें कोई ख़राबी होगी और न वे उससे मतवाले होंगे और उनके पास निगाहें बचाने वाली (लजीली) सुन्दर आँखों वाली स्त्रियाँ होंगी ऐसी (निर्मल) मानो छिपे हुए अण्डे हों" (37:41-49)*

*;पपद्ध "निस्संदेह डर रखने वालों के लिए सफलता है बाग़ हैं और अंगूर, और नवयुवतियाँ समान आयुवाली (उभरे उरोजों सहित) और छलकता मद्य-पात्र"। (78:31-34)*

'जन्नत' की हूरें सदैव युवा रहती हैं जिनकी बड़ी-बड़ी आँखें, तिरछी चितवनें और उभरे हुए उरोज हैं। ज़रा अल्लाह की शालीनता और उसके तरीकों की पवित्रता पर भी ध्यान

दीजिए! क्या कोई ईमानदारी से कह सकता है कि यह सब अनुयायियों को आकर्षित करने के लिए प्रलोभन नहीं हैं? अल्लाह अपने समर्थकों का संख्या बढ़ाने के लिए कितना बेताब है!

इस बात की पुष्टि में मैं हदीस तिरमिज़ी खंड-2 पृ.(35-40) में दिए गए हूरों के सौंदर्य के वर्णन को प्रस्तुत करना चाहूँगा जोकि इस प्रकार है-

(*i*) हूर एक अत्यधिक सुंदर युवा स्त्री होती है जिसका शरीर पारदर्शी होता है। उसकी हड्डियों में बहने वाला द्रव्य इसी प्रकार दिखाई देता है जैसे रूबी और मोतियों के अंदर की रेखाएँ दिखती हैं। वह एक पारदर्शी सफेद गिलास में लाल शराब की भाँति दिखाई देता है।

(*ii*) उसका रंग सफेद है, और साधारण स्त्रियों की तरह शारीरिक कमियों जैसे मासिक धर्म, रजोनिवृत्ति, मल व मूत्र विसर्जन, गर्भधारण इत्यादि संबंधित विकारों से मुक्त होती है।

(*iii*) प्रत्येक हूर किशोर वय की कन्या होती है। उसके उरोज उन्नत, गोल और बड़े होते हैं जो झुके हुए नहीं हैं। हूरें भव्य परिसरों वाले महलों में रहतीं हैं।

(*iv*) हूर यदि 'जन्नत' में अपने आवास से पृथ्वी की ओर देखे तो सारा मार्ग सुगंधित और प्रकाशित हो जाता है।

(*v*) हूर का मुख दर्पण से भी अधिक चमकदार होता है, तथा उसके गाल में कोई भी अपना प्रतिबिंब देख सकता है। उसकी हड्डियों का द्रव्य आँखों से दिखाई देता है।

(*vi*) प्रत्येक व्यक्ति जो 'जन्नत' में जाता है, उसको 72 हूरें दी जाएँगी। जब वह 'जन्नत' में प्रवेश करता है, मरते समय उसकी उम्र कुछ भी हो, वहाँ तीस वर्ष का युवक हो जाएगा और उसकी आयु आगे नहीं बढ़ेगी।

हदीस तिरमिज़ी खंड-2 (पृ.138) में कहा गया है कि *"जन्नत में एक पुरुष को एक सौ पुरुषों के बराबर कामशक्ति दी जाएगी"*

क्या इसके बाद भी मुझे यौन-सुखों के लिए आकर्षित करने वाले प्रलोभनों और प्रमाणों को देने की आवश्यकता रह गई है जो कि इस्लाम अपने जिहादी योद्धाओं को प्रेरित करने के लिए प्रस्तुत करता है?

## 2. लूट

वास्तव में इस्लाम के "लूट" शब्द में सैक्स भी शामिल है क्योंकि इसमें अन्य चीज़ों के साथ में स्त्रियाँ भी सम्मिलित होती हैं। मैंने यहाँ 'जिहाद' की पेचीदियों को समझने की सुविधा की दृष्टि से लूट को 'सैक्स' और 'लूट का माल' दो भागों में बाँट दिया है।

एक लुटेरे को निर्दयी होना ही पड़ता है और उसको पीड़ित व्यक्ति के प्रति कोई सहानुभूति भी नहीं होनी चाहिए और न इसकी आत्मचेतना की धिक्कार का ही उसके मन में कोई महत्त्व होना चाहिए। वास्तव में उद्देश्य जितना अधिक घृणित होगा, उसे उतना ही अधिक उचित समझना चाहिए। यही कारण है कि कुरान 'लूट' को वैधानिक मानता है।

*"तो जो कुछ "गनीमत" (लूट का माल) तुमने हासिल किया है, उसे 'हलाल' (उचित) और पाक (पवित्र) समझकर खाओ" । (8:69-70)*

अपने अनुयायियों को निर्दयी लुटेरा बनाने के लिए, वह उन्हें बार-बार अपने संभावित पीडितों यानी गैर-मुसलमानों के प्रति घृणा पैदा करने के लिए प्रेरित करता है।

***(i)** "निश्चय ही (भूमि) पर चलने वाले सबसे बुरे जीव अल्लाह की दृष्टि में वे लोग हैं जिन्होंने 'कुफ्र' किया फिर वे 'ईमान' नहीं लाते"। (इस्लाम नहीं स्वीकारते) (8:55)।*

*(ii) "तो इन काफ़िरों पर अल्लाह की फिटकार है"। काफ़िरों (गैर-मुसलमानों) के लिए अपमानित करने वाली यातना है।" (2:89-90)*

*(iii) "जो काफ़िर हैं, जालिम वही हैं"। (2:254)*

*(iv) "हे ईमानवालो! उन काफ़िरों से लड़ो जो तुम्हारे आस-पास हैं और चाहिए कि वे तुम में सख्ती पाएँ।" (9:123)*

*(v) "किताब वाले" (यहूदी-ईसाई) जो न अल्लाह पर ईमान लाते हैं और न अन्तिम दिन पर और न उसे 'हराम' करते हैं जिसे अल्लाह और उसके 'रसूल' ने हराम ठहराया है और सच्चे 'दीन' को अपना दीन बनाते हैं उनसे लड़ो यहाँ तक कि वे अप्रतिष्ठित होकर अपने हाथ से ज़िज़िया देने लगें।" (9:29)*

क्योंकि यह लूट ही थी कि जिसके परिणामस्वरूप इस्लाम का प्रसार हुआ, यहाँ तक कि जिन चीज़ों को स्वयं पैगम्बर ने पवित्र घोषित किया, उनकी मान्यता समाप्त हो गई, जब वे बातें उन्हें असुविधाजनक लगीं। उदाहरण के लिए-

*"जब हराम (पवित्र) महीने बीत जाएँ तो मुशरिकों को जहाँ-कहीं पाओ कत्ल करो और उन्हें पकड़ो और उन्हें घेरो और हर घात की जगह उनकी ताक में बैठो। फिर यदि वे तौबा कर लें और 'नमाज' कायम करें और ज़कात दें तो उनका मार्ग छोड़ दो।" (9:5)*

रजब का महीना अनेक पवित्र महीनों में से एक माना जाता है जिसमें कुरान के अनुसार युद्ध करना वर्जित है। परन्तु ऐसा हुआ कि नखला में रजब के आखिरी दिन मुसलमानों ने कुरेशों के एक कारवाँ को दबोच लिया। यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया होता तो दैवी नियमों के अन्तरगत व्यापारिक माल से लदा कारवाँ सुरक्षित निकल गया होता। परन्तु मुसलमानों ने उस्मान इब्न अलमोगिरा और अल-हकीम इन्ब कीसान नामक दो सुरक्षा गार्डों को पकड़कर लूट के माल सहित पैगम्बर (मुहम्मद) के सामने प्रस्तुत कर दिया। इससे पैगम्बर मुहम्मद प्रसन्न नहीं दिखे और उन्होंने कहा-"मैंने तुमको कभी भी पवित्र महीने में लड़ने के आदेश नहीं दिए हैं"। इसमें कोई संदेह नहीं कि अब्दुल्ला इब्न जहश नामक लूट करने वाले नेता, जिसे कि सात अन्य लोगों के साथ स्वयं पैगम्बर ने भेजा था, को मुहम्मद ने फटकार लगाई। लेकिन इस बात के कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं कि उन्होंने उस समय लूटे गए सामान को उसके असली हकदार (मालिक) को कभी वापिस किया गया हो। उन्होंने पवित्र महीनों में लूट की प्रथा को निरुत्साहित करने के लिए भी कुछ नहीं किया बल्कि सर्वशक्तिमान अल्लाह ने इस समस्या के निपटारे का एक मार्ग सुझाया जो इस प्रकार है-

*"वे तुमसे पवित्र महीने में युद्ध के बारे में पूछते हैं? कह दो, उसमें युद्ध बहुत बुरा है, परंतु अल्लाह के मार्ग से रोकना, उसका कुफ्र करना, मस्जिदे हराम (काबा) से रोकना, और उसके लोगों को उससे निकालना अल्लाह की दृष्टि में इससे भी बढ़कर है : और फितना है, रक्त-पात से भी बढ़कर है"। (2:217)*

पवित्रता और लौकिकता की अवधारणाओं का स्वयं में कोई मतलब नहीं होता है। वही वरदान है जो कि इस्लाम के उद्देश्य की पूर्ति करता हो, वही कल्याणकारी है। मगर इसके विपरीत सभी कुछ विनाशकारी है। निस्संदेह माले-गनीमत (लूट का माल) धर्मान्तरित मुसलमानों के लिए सबसे बड़ा प्रलोभन एवं आकर्षण था। लेकिन इनमें से उन सत्तर शरणार्थियों को, जो पैगम्बर मुहम्मद के साथ मक्का से मदीना आए थे तथा वे एक सौ मदीना के अंसारों को निकाल देना चाहिए जिन्होंने मुहम्मद के मदीना में आने से पहले इस्लाम स्वीकार किया था।

मुसलमानों का यह माले-गनीमत का आकर्षण ही था जिसके कारण 624 एडी में पहले सशस्त्र युद्ध का प्रकोप हुआ जो 'बद्र के युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है। ईमानवाले ही नहीं बल्कि मदीना के गैर-मुसलमानों ने भी अपने धर्मान्तरित साथी नागरिकों से ईर्षा की और उन्होंने इस लड़ाई में भाग लेना चाहा। जैसे ही पैगम्बर ने उन्हें अपने सैनिकों के बीच पाया, तो उसने उन्हें अपने ऊँट के पास बुलाया और पूछा कि वे वहाँ क्या कर रहे थे, 'आप हमारे बन्धु हैं, उन्होंने उत्तर दिया, 'जिसको कि हमारे नगर ने सुरक्षा प्रदान की हुई है और हम अपने लोगों के साथ मालेगनीमत की आशा में यहाँ आए हुए हैं।" इस पर पैगम्बर ने कहा-

"मेरे साथ अन्य कोई नहीं जाएगा। जब तक कि वह हमारे 'ईमानवाला' न हो।"

उन्होंने कहा कि "वे बड़े योद्धा हैं और वे उसकी तरफ से बहादुरी से लड़ेगें और मालेगनीमत के अलावा उन्हें कुछ नहीं चाहिए।" यह कहते हुए उन्होंने आगे बढ़ने की कोशिश की परन्तु पैगम्बर ने उन्हें रोक दिया और कहा "तुम इस प्रकार नहीं लड़ सकते हो, पहले 'ईमान लाओ' और "फिर लड़े।"

इस परिस्थिति में और कोई चारा न देखते हुए, "वे 'ईमान लाए' और स्वीकारा कि "मुहम्मद अल्लाह का पैगम्बर है।" तब मुहम्मद ने कहा, "अब आगे जाओ और लड़ो"। "जैसे ही वे माले-गनीमत लेकर मदीना लौटे, नागरिकों (अंसारों) में से एक ने आश्चर्य से कहा, "यदि मैं भी पैगम्बर के साथ चला गया होता तब मुझे भी इतनी ही बड़ी 'लूट' मिल गई होती।"

सर विलियम म्यूर द्वारा लिखित पुस्तक "लाइफ ऑफ मौहम्मद" (पृ. 215) में वर्णित यह घटना इस्लामी सिद्धांत में मालेगनीमत के महत्त्व को साफ़ तौर पर बतलाती है और इसके स्पष्टीकरण के लिए मुझे और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। यह तो युद्ध में मुहम्मद की विजय है जिसे कि लूट के प्रलोभन ने सरल बना दिया था तथा जो कुछ पैगम्बर मुहम्मद, बाद में हुआ वह सब इसी का नतीजा है। यहाँ यह भी याद रखना चाहिए कि मालेगनीमत के लालच ने मुसलमानों की गैर-मुसलमानों के प्रति घृणा को भी पिघला दिया, जो कि संयोगवश उनके अपने सगे-संबंधी ही थे। कुरेशों, जो कि पीड़ित थे, ने युद्ध से पहले एक सभा की जहाँ कि इस बात को साफ़ तौर पर बल पूर्वक कहा गया कि "हम लड़ चुके हैं और अपने भाइयों और सगे बंधुओं का खून बहा चुके हैं। अब हमारे जीवन का और अर्थ क्या रह जाएगा? अब हमें वापिस चलना चाहिए।"

अन्त में यह अबू जहल और उसके साथियों की वाग्पटुता ही थी जिसके कारण बाजी पलट गई। "इसके विपरीत मुसलमानों ने जो कि मालेगनीमत पाने के लिए अल्लाह के सैनिकों के रूप में लड़ रहे थे, ने नहीं स्वीकारा कि उन्होंने अपने बन्धुओं से खून का रिश्ता समझा हो और वे लड़ने को उत्सुक हुए। पैगम्बर ने कहा, "हे स्वामी! इन लोगों का सरदार अबू जहल बचने न पाए।"

"जैसे ही लड़ाई प्रारम्भ होने वाली थी, पैगम्बर ने अपने दोनों हाथ उठाए और प्रार्थना की : ओ स्वामी! मैं तेरी विनती करता हूँ कि मुझे सहायता करने और जिताने का अपना वायदा मत भूलना। ओ मालिक! यदि मेरी यह छोटी-सी टुकड़ी मारी गई, तो मूर्ति पूजा बनी रहेगी और दुनियाँ से तेरी सच्ची पूजा समाप्त हो जाएगी।"

अल्लाह, जो कि सामान्यतया भूल सकता है और यह नहीं जानता था, कि यदि मुहम्मद हार गया तो क्या होगा, को समय चूकने से पहले अपना वायदा याद आ गया और उसने

गैर-मुसलमानों को पराजित करने के लिए फिरिश्तों की एक सैना भेज दी ताकि 'ईमानवाले' मालेगनीमत के इनामों का लाभ उठा सकें।

कोई भी आदेश स्पष्ट तौर पर और बुद्धिमत्तापूर्ण कभी नहीं दिया गया। इससे पैगम्बर मुहम्मद की सैनिक बुद्धिमत्ता झलकती है, और उन आदेशों का पूरी तरह पालन होने की आवश्यकता थी। लेकिन तीरंदाजों ने जब देखा कि गैर-मुसलमानों की हार हो गई है तो उन्होंने इस आदेश की अवहेलना की और मालेगनीमत लूटने के लिए अपने स्थान से हट गए। ख़ालिद ने जैसे ही देखा कि पिछला क्षेत्र असुरक्षित है, तो वह अल्लाह की सेना पर टूट पड़ा और उन्हें अपनी तलवार के बूते पर तितर-बितर कर दिया। यह समझकर कि स्वयं पैगम्बर भी मर गया है तो कुरेशों ने आगे लड़ाई जारी नहीं रखी और विजेता के रूप में मक्का वापिस चले गए।

इस घटना से अल्लाह के सैनिकों का मालेगनीमत के प्रति महत्त्व प्रकट होता है। वे माले-गनीमत के लिए लड़े भी और मालेगनीमत के कारण हारे भी।

इसी तरह फरवरी, 630 एडी में तैफ़ के समर्पण में जो कुछ हुआ उससे साफ़ पता चलता है कि पैगम्बर के अधिकांश अनुयायी उसकी सैनिक योग्यता से प्रभावित थे जिसके फलस्वरूप उन्हें लूट का माल मिलता था। उस अवसर पर पैगम्बर ने व्यक्तिगत कारणों से पराजितों को कैद नहीं किया। वास्तव में, पैगम्बर के मक्का और मदीना के अनुयायियों ने अपने कैदियों के प्रति वही नीति अपनाई। लेकिन फ़ैज़ारा कबीले के लोगों ने वैसा नहीं माना और उन्हें वैसा मानने के लिए समझाना-बुझाना पड़ा।

कैदियों की रिहाई की व्यवस्था के बाद जैसे ही पैगम्बर मुहम्मद लौटने के लिए अपने ऊँट पर बैठे तो उनके साथियों ने उनको माले-गनीमत न बाँटने के कारण घेरकर रोक दिया। उन्हें डर था कि जिस प्रकार वे अपने कैदियों से वंचित कर दिए गए हैं, वे अपने माले-गनीमत के हिस्से से भी वंचित हो जाएँगे। उन्होंने पैगम्बर को घेर लिया और चिल्लाए, कि "हमें माले-गनीमत में से ऊँटों, भेड़ों आदि में से बाँट कर दो। उन्होंने अभद्रता से उन्हें ढक्का दिया। तब पैगम्बर 'एक पेड़ के नीचे शरण लेने को विवश हो गए' और उनका चौगा कन्धे पर से फट गया।"

"उन्होंने कहा, हे मानव! मेरा चोगा मुझे वापिस करो, क्योंकि मैं मालिक की कसम खाता हूँ कि यदि ऊँटों और भेड़ों की संख्या इस जंगल के पेड़ों के बराबर हो तो मैं उन सबको तुममें बाँट दूँगा। तुमने मुझे अब तक कभी झूठा और कंजूस नहीं पाया है।"

वास्तव में लूट का माल बहुत था और पैगम्बर ने अपना वायदा पूरा किया। अबू सूफयान एवं उसके बेटों और अन्य अनेकों शक्तिशाली लोगों को उन्होंने प्रत्येक को एक सौ ऊँट दिए। यहाँ तक कि जिन्होंने लूट के माल में असंतोष जताया, उन्हें दुगना हिस्सा दिया।

"जब एक बदायून ने शिकायत की कि जोइल जैसे सच्चे और वफादार को कुछ नहीं मिला जब कि नए धर्मान्तरितों को अधिकांश भाग मिला तो पैगम्बर ने कहा मैं इन लोगों का दिल इस्लाम के लिए जीतना चाहता था जब कि जोइल जैसे निष्ठावान को किसी प्रकार के प्रलोभन की ज़रूरत नहीं है।"

उपरोक्त उदाहरण से निश्चित रूप से प्रगट होता है कि इस्लामी जिहाद का उद्देश्य गैर-मुसलमानों को लूटना है ताकि धर्मान्तरितों की संतुष्टि करके उनकी संख्या बढ़ाई जा सके।

हमें यह भी ध्यान देना चाहिए कि जैसे ही पैगम्बर की सैनिक शक्ति का परचम सारे अरेबिया में फैला, तो अनेक अरबी पैगन कबीले भारी संख्या में उसकी शरण में आने लगे। ये सब किसी यकायक इस्लामी हमले से पहले सुरक्षा प्राप्त करने के लिए शामिल हुए क्योंकि गैर-मुसलमानों द्वारा इस्लाम स्वीकार न करने के परिणामस्वरूप ये हमले उनके भाग्य बन चुके थे। इस समर्पण के पीछे, मुसलमानों द्वारा यकायक हमला, उसके प्रति उत्सुकता एवं आशंका भी इसकी रक्षा का हिस्सा था। अरबियों ने, मुहम्मद के समान व्यक्तित्व वाला पहले कोई मनुष्य नहीं देखा था। हालांकि यह सब मुहम्मद के जीवन के आखिरी कुछ वर्षों में ही हुआ। इस प्रकार, नए धर्मान्तरितों को इस नवीन पंथ के प्रति वफादारी का अनुभव पहले नहीं था। सम्भवतः उनकी निराशा का सबसे बड़ा कारण यह भी था कि अब उन्हें भविष्य में और अधिक लूट का माल मिलने की सम्भावना लगभग बहुत कम रह गई थी क्योंकि अब तक लगभग सारा ही अरेबिया इस्लाम के प्रभाव में आ चुका था। इससे भी अधिक हानिकारक जो सिद्ध हुआ वह यह था कि अब मुसलमानों को धार्मिक टैक्स, जैसे ज़कात देना पड़ता था। इस प्रकार इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि पैगम्बर मुहम्मद की मृत्यु के बाद इस्लाम जिसने कर्मकाण्डों और विश्वासों की अनिवार्यता के द्वारा स्वतंत्र मानव चिंतन को प्रतिबन्धित कर दिया, के विरुद्ध एक भयानक विस्फोट हुआ अरेबियायी रेगिस्तान के अधिकांश कबीले इस्लाम-त्याग-भावना को प्रदर्शित करने के लिए इस्लाम के विरुद्ध हो गए।

इस्लाम के सबसे पहले खलीफ़ा अबूबकर ने पैगम्बर मुहम्मद के कार्यकलापों का अनुसरण करते हुए लूट को अपनी विदेश नीति का मुख्य अंग बनाया और मालेगनीमत के शिकारी अरबियों को मिश्र और इरान की तरफ भेज दिया। इस प्रकार लूट के सहारे अरब साम्राज्य की स्थापना हुई जिसके परिणामस्वरूप इस्लाम का अनेक देशों में फैलाव हुआ।

बीसवीं सदी में इस्लाम की चमक फीकी पड़ गई तथा इस्लाम, जिसे कि शान्ति का दूत, करुणा और मानवता के रूप में प्रक्षेपित किया गया था, मानव अधिकारों के बढ़ते प्रभाव और सबके साथ समानता एवं न्याय की स्वाभाविक माँग के फलस्वरूप, इसका प्रभाव कम होने लगा।

इसके फलस्वरूप मुस्लिम प्रचारकों को अनेक बाधाएँ होने लगीं। इसलिए गैर-मुसलमानों को भरमाने व बहलाने के लिए, कुछ मुस्लिम विद्वानों ने यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि इस्लामी 'जिहाद' तो (इस्लाम पर) आक्रान्ताओं के विरुद्ध एक रक्षात्मक युद्ध होता है-

***(i)** "जो लड़ना चाहें उन्हें जिनके साथ अन्याय हुआ है, लड़ने की आज्ञा दी गई" (22:39)*

***(ii)** "और अल्लाह की राह में उन लोगों से युद्ध करो जो तुमसे युद्ध करें और सीमोल्लघन करने वाले न बनो और उनको जहाँ-कहीं पाओ कत्ल करो और उन्हें निकालो जहाँ से उन्होंने तुम्हें निकाला है..."। (2:189-190)*

यदि इन आयतों का यही असली अर्थ होता जैसा कि इनसे प्रतीत होता है, तो 'जिहाद' व्यक्ति के अधिकारों और सम्मान की रक्षा के लिए वरदान सिद्ध हो गया होता। वास्तव में ये आयतें मक्का के गैर-मुसलमानों से बदला लेने के लिए चतुराई पूर्ण ढंग से मुसलमानों को प्रेरित करने को हैं जिन्होंने कि प्रारम्भ में पैगम्बर और उनके साथियों को प्रताडित किया था। इन आयतों का आत्मरक्षा से कोई लेना देना नहीं है।

"क्या तुम ऐसे लोगों से नहीं लड़ोगे जिन्होंने अपनी कसमों को तोड़ा और 'रसूल' को निकाल देने की फिक्र की और उन्होंने ही तुमसे पहले छेड़ भी की। क्या तुम उनसे डरते

हो? यदि तुम 'ईमान' वाले हो तो अल्लाह इस बात का ज्यादा हकदार है कि उससे डरो। उनसे लड़ो! अल्लाह तुम्हारे हाथों उन्हें यातना देगा, और उन्हें रुसवा करेगा और उनके मुकाबले में तुम्हारी सहायता करेगा और 'ईमान' वाले लोगों के दिल ठण्डे करेगा" (9:13-14)

(iii) *"हे नबी! 'ईमानवालों' को लड़ाई पर उतारो। यदि तुम में बीस जमे रहने वाले होंगे तो वे दो सौ पर प्रभुत्व प्राप्त करेंगे। और यदि तुम में सौ हों तो वे एक हजार काफ़िरों पर भारी रहेंगे।" (8:65)*

इस पर महान आश्चर्य होता है कि जब अल्लाह सर्वशक्तिमान है तो वह स्वयं गैर-मुस्लिमों को प्रताडित क्यों नहीं कर सकता है और अपनी इच्छा पूर्ति के लिए वह सामान्य मरणशील जीवों को उत्तेजित क्यों करता है? क्या यह सर्वशक्तिमान परमेश्वर का अपमान नहीं है? इससे तो यही स्पष्ट होता है कि कुरान के ये आदेश अल्लाह के नहीं बल्कि पैगम्बरपन की आड़ में स्वयं पैगम्बर मुहम्मद के हैं।

ज़रा निम्नलिखित आयत को देखिए जिससे 'जिहाद' की प्रतिशोधपूर्ण भावना स्पष्ट झलकती है।

*"किसी 'नबी' के लिए यह उचित नहीं कि उसके पास कैदी हों यहाँ तक कि वह धरती में रक्तपात करे" (8:67)*

वास्तव में 'जिहाद' लूट के माल के लिए गैर-मुसलमानों का रक्तपात और उन्हें पराधीन करने के लिए एक अभ्यास मात्र है ताकि वे स्वयं को अपमानित अनुभव करते हुए उपहार दें। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि यह गैर-मुसलमानों को इस्लाम स्वीकार करने की दावत देने पर उनके द्वारा अस्वीकारने की प्रतिक्रिया में आक्रमण का प्रमाण है। खैबर के यहूदियों पर यकायक हमला और उनका विनाश इसी के कारण किया गया था।

इस बात की सच्चाई की पुष्टि निम्नलिखित हदीस से होती है-

*"मुझे (काफ़िरों) लोगों से तब तक युद्ध करने की आज्ञा दी गई है जब तक कि वे यह स्वीकार न करें कि अल्लाह के सिवा अन्य कोई पूज्य नहीं है और (मुहम्मद) को अल्लाह का पैगम्बर न माने; और जब वे ऐसा कर लें तो उनका जीवन परिवार (सहित) और सम्पत्ति की मेरी ओर से सुरक्षा की गारंटी है, इसके अलावा जो भी कानूनन सही हो"। (सहीद मुस्लिम खंड 1 : 31 पृ. 20-21)*

इसके अलावा, कुछ यह सोचते हैं कि 'जिहाद' एक रक्षात्मक युद्ध है। अन्य अनेक नए सम्प्रदाय हैं जो यह घोषणा करते हैं कि यह एक मिथ्या आरोप है कि 'जिहाद' एक इस्लामी सिद्धांत है (यानी वे जिहाद के सिद्धांत को नकारते हैं, अनुवादक)। यह कुरान की मूल मान्यता को नकारने का कितना पवित्र उपाए है। ज़रा निम्नलिखित आयत को भी देखिए: *"निस्संदेह अल्लाह ने 'ईमानवालों' से उनके प्राण और उनके माल इसके बदले में खरीद लिए हैं कि उनके लिए 'जन्नत' है। वे अल्लाह के मार्ग में लड़ते हैं तो वे मारते भी हैं और मारे भी जाते हैं। यह उसके जिम्मे तौरात, इंजील और कुरआन में (किया गया) पक्का वादा है"। (9:111)*

इसका सीधा-सा यही अर्थ है कि एक सच्चे मुसलमान ने अपने को जन्नत पाने के बदले अल्लाह के हाथों में बेच दिया है और वह उसका खरीदा हुआ सैनिक हो गया है जिसके जीवन का लक्ष्य केवल गैर-मुसलमानों की हत्या करना है अथवा स्वयं मारा जाना है।

उसमें कोई आश्चर्य नहीं है। हदीस बुख्रारी भी कहती है: "जन्नत तलवारों के साये में बसता है" (बुख्रारी, खंड 4 : 73, पृ. 55)

पैगम्बर ने भी कहा : *"लड़ाई के मैदान में एक रात के लिए भी अल्लाह के सैनिक के रूप में लड़ना घर बैठे एक हजार वर्ष तक प्रार्थना करने से उत्तम है" (माजाह, खंड 2 : पृ. 166)*

इससे कोई भी स्वयं इस्लाम के हिंसात्मकस्वरूप, उसके उद्देश्य और उसकी पूर्ति के तरीकों को स्वयं समझ सकता है।